

अध्याय-तृतीय

पंचायती राज संस्थाएँ: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से सम्बंधित कानून एवं संवैधानिक प्रावधान

पंचायती राज एक परिचय

पंचायती राज की संस्था भारत की सभ्यता जितनी ही पुरानी है। ग्राम पंचायतें हमेशा से ही भारतीय सामाजिक ताने-बाने का हिस्सा रही हैं। गांव में पांच निर्वाचित वरिष्ठों की अवधारणा, समुदाय के विवाद के मामलों को निपटाने के लिए संगठन की स्व-सरकार का यह रूप दुनिया में कहीं और नहीं रहा है। वास्तव में, प्रत्येक जाति के लिए पंचायतें थीं जो जाति के नियम और आचार संहिता लागू करती थीं। जबकि राजा और शासक बदल जाते थे परन्तु गाँव और पंचायतें बुनियादी अपरिवर्तनीय इकाइयों के रूप में जारी रहीं।¹ पंचायती राज का प्रयोग लोकतंत्र को दृढ़ और गहरी जड़ें प्रदान करने और लोकतांत्रिक ढांचे को व्यापक आधार प्रदान करने के लिए किया गया है ताकि आम आदमी को अपने नागरिक और राजनीतिक मामलों के संचालन में वास्तविक भागीदार बनाया जा सके। पंचायती राज संस्थानों (PRI) को सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं का एक महत्वपूर्ण पहलू माना गया है। पंचायती राज संस्थानों से अपेक्षा की जाती है कि वह ग्रामीण हितों का ध्यान रखे और भारतीय ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्गों की आकांक्षाओं को पूरा करे। इसलिए लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण केवल शक्तियों की प्राप्ति तक सीमित नहीं रही है। इसमें जिम्मेदारी का अवमूल्यन भी शामिल होना चाहिए। (देसाई 2000) ने प्रस्तुत अध्याय में पंचायतों के इतिहास, उद्गम तथा विभिन्न काल क्रम में पंचायतियों के विकास पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त संविधान में उल्लेखित प्रावधानों का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि

संविधान के नीति निर्देशक के तत्वों का हिस्सा है। केन्द्र स्तर पर गठित विभिन्न समितियों जैसे बलवन्त राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति, जी.वी.के.राव समिति, एल.एम.सिंघवी समिति व थुंगन समिति की सिफारिशों का उल्लेख शोध अध्याय में प्रस्तुत किया गया है²

पंचायती राज: एक संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण

इतिहास बताता है कि भारतीय उपमहाद्वीप में सदियों से यहाँ स्थानीय स्वशासन का अस्तित्व रहा है। पंचायती राज प्रणाली के विकास को तीन अलग-अलग काल खंडों से जाना जा सकता है:

- पूर्व-औपनिवेशिक काल
- औपनिवेशिक युग
- उत्तर-औपनिवेशिक काल

पूर्व-औपनिवेशिक काल

पंचायती राज की अवधारणा- गाँव हमेशा सामाजिक व आर्थिक जीवन की महत्वपूर्ण इकाई के साथ-साथ अतीत से प्रशासन की महत्वपूर्ण संस्था रहा है। वैदिक साहित्य में सभा एवं समितियों का उल्लेख हुआ है। चौथी व पांचवी शताब्दी पूर्व के जातक कहानियों में गाँव का सुन्दर चित्रण करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान शासन के लिये ये सभा समितियाँ लोगों की भलाई के लिए कार्य करती थीं। आर्य जाति इतिहास के प्रवेश करने से पूर्व भारत में उन्नत एक शासन की उन्नत व्यवस्था मौजूद थी इसका परिचय सिंधु घाटी की सभ्यता में भी देखा गया है। इस सभ्यता का क्षेत्र बहुत व्यापक था और इसके प्रधान नगर उन स्थानों पर स्थित थे

जहाँ वर्तमान समय में मोहनजोदड़ों और हडप्पा में विद्यमान हैं। यहाँ एक व्यवस्थित प्रशासन था। शाब्दिक दृष्टि से पंचयाती राज शब्द हिन्दी भाषा के दो पृथक-पृथक शब्दों “पञ्च “ और “राज” से मिलकर बना है, जिनका संयुक्त तात्पर्य पाँच जन प्रतिनिधियों के समूह के शासन से है।³

वैदिक काल:- पृथ्वी पर जब से मानव ने सामुहिक रूप में रहना प्रारम्भ किया, तभी से अपनी सुख सविधा के विभिन्न आयामों पर विचार करने लगा। पंचयाती राज की परिकल्पना भी इसी परिवर्तन का परिष्कृत रूप है, जो प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। इसने अपने अस्तित्व को न केवल कायम रखा है, अपितु समय-समय पर सार्थक दिशा में परिवर्तन भी किया है। स्थानीय शासन को मानव की मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक आवश्यकता के रूप में रेखांकित किया है। मानव की सदैव यह इच्छा रही है कि जो भी सरकार हो, वह उसके स्वयं के द्वारा चुनी हुई एवं अच्छी सरकार होनी चाहिए। मानव मन की इच्छा अति प्राचीन काल से स्थानीय संस्थाओं का विकास अन्तर्निहित रही है। वर्तमान समय में पंचायती राज व्यवस्था स्वशासन का अभिन्न अंग बन चुकी है। प्राचीन भारत में पंचायत शब्द को संस्कृत भाषा के “पंचायतन” से परिभाषित किया गया है। जिसका अर्थ होता है “पाँच व्यक्तियों का समूह” से है। सभ्यता के विकास के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत ई.पू. 2000 वर्ष पहले हो चुकी थी। सिन्धु घाटी सभ्यता में मोहनजोदड़ों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण व्यवस्था का अनुमान वहाँ की नगरीय व्यवस्था से लगाया जा सकता है। वैदिक साहित्य में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संगठित व्यवस्था के कुछ संदर्भ यत्र तत्र मिलते हैं। उस समय प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। जिसका मुखिया ग्रामीणी कहलाता था। ग्रामीणी ग्राम की श्रेष्ठ एवं बुजुर्गों से सलाह कर अपना कार्य करता था। ऋग्वेदे में सभा, समिति एवं विदथ नामक संस्थाओं का उल्लेख है, जिनमें

आमजन की प्रभावी भागीदारी होती थी। इन संस्थानों को निर्णय निर्माण में महतोवपूर्ण अधिकार प्राप्त था ऋग्वेद के सूक्त (9/92/6) में एक सभा का उल्लेख मिलता है। उस समय कृषि एवं पशुपालन प्रमुख व्यवसाय थे। इस कारण ग्रामों का नगरो की अपेक्षा अधिक महत्व था और यातायात की कठिनाई के कारण प्रत्येक ग्राम स्वावलम्बी होता था। अथर्ववेद में एक श्लोक मिलता है -

“ये ग्रामा वदरण्यं या सभा अधिथूम्याम।

ये संग्रामाः समितियस्तेषु चारू वेदम् ते॥“ (7/12/1)

अर्थात् पृथ्वी ग्रामो, वनो व सभाओ में हम सुन्दर वेद युक्त वाणी का प्रयोग करें। मनु ने अपने साहित्य में ग्रामा (गाँव) पुरा (टाउन) व नागरा (शहर) तीन आबादी होने का उल्लेख किया।⁴

महाकाव्य काल:- रामायण तथा महाभारत में सभा/छोटे राज्यों का उल्लेख मिलता है। रामायण में जनपदों को ग्रामीण गणराज्यों के संघों के रूप में जाना जाता है। स्मृति काल में मनुस्मृति में उल्लेख है कि राष्ट्र में राजा प्रजा पर शासन करता है। “ग्रामिक” ग्रामीण शासन के लिए उत्तरदायी होता था। इसका प्रमुख कार्य ग्रामवासियों से कर एकत्रित करना तथा ग्राम में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखना था। मनु ने प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम का माना एवं क्रमशः 1 ग्राम, 20 ग्राम, 100 ग्राम, 1000 ग्रामों के उत्तरोत्तर संगठनों, के अधिकारी को उच्च संगठन के अधिकारी के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया है। महाजनपद काल एवं बौद्ध काल:- महाजनपद काल के गणराज्यों में ग्राम पंचायतें भी होती थीं, जहाँ राजतंत्रत्मक राज्यों की ग्राम पंचायतों के समान ही अपना कार्य करती थीं। ये कृषि व्यापार उद्योग आदि के विकास का कार्य करती थीं। बौद्ध काल में ग्राम की सभा के प्रधान को ग्रामीणी, ग्रामिक या

ग्राम भोजक के नाम से पुकारते थे। ग्रामवासी जिसका चुनाव करते थे। ग्राम सभा में ग्राम वृद्ध के रूप में ग्राम के मुखिया लोग हिस्सा लिया करते थे। लेकिन उनके अलावा गाँव के अधिकांश व्यक्ति भी भाग लिया करते थे। ग्राम भोजक के कार्यों के विरुद्ध राजा के पास अपील की जा सकती थी। राजा को आवश्यकता ग्राम शासन में संशोधन करने तथा ग्राम भोजक को अपदस्थ करने का अधिकार था। कृषि और व्यापार पर भी ग्राम भोजक के माध्यम से विशेष ध्यान रखा जाता था। खेतों पर किसानों का अधिकार था। किसान ग्राम पंचायत की अनुमति के बिना अपने खेत दूसरे को नहीं बेच सकता था।

ग्राम स्तर पर स्थानीय स्वशासन की एक संस्था के रूप में पंचायत की उत्पत्ति प्राचीन भारत में हुई थी। अंग्रेजों के आने से बहुत पहले, भारत में ग्राम समुदायों और सरकारों के रूप में स्थानीय सरकार मौजूद थी। 1830 में चार्ल्स मेटकाफ ने कहा, 'स्थानीय स्वशासन व्यवस्था भारत की अनूठी राजनीतिक व्यवस्था रही है जहाँ वंशवाद की कोई जगह नहीं रही है'।

भारत में हिंदू, पठान, मुगल, मराठा, सिख, अंग्रेज, सभी बारी-बारी से अपना शासन किया है, लेकिन गाँव के समुदाय तथा प्रशासन एक समान रहा है' (माहेश्वरी 2010) एक प्रकार की ग्राम सभा या गाँव के निवासियों का संघ, जिसमें गाँव के बुजुर्ग, पंचायत या ग्राम सभा शामिल होते हैं, प्रशासनिक और न्यायिक कार्य करते हैं। कभी-कभी, ग्राम सभाओं या पंचायतों को इन निकायों के माध्यम से अपने स्वयं के जीवन को विनियमित करने वाले गाँवों में से चुना गया था। हम मनुस्मृति (मनु संहिता), कौटिल्य के अर्थशास्त्र (400B.C) और महाभारत में ग्राम सभाओं के संदर्भ पाते हैं। महाभारत के शांति पर्व में पंचायत संस्कार नाम की एक परम्परा भी बताई गई है। इसमें आम लोग शामिल थे और इसलिए उन्हें जन संसद कहा जाता था। वाल्मीकि की रामायण उस गणपद की बात करती है जो ग्राम गणराज्यों के

संघ का था। केवल वही व्यक्ति इसके सदस्य बन सकते हैं जिनके दिल में लोगों का सामान्य कल्याण था। सदस्यता को दुर्जन या अभद्र व्यक्तियों से वंचित कर दिया गया था। ग्रामीण के शासन व्यवस्था का उल्लेख शुक्रनिती (सुकराचार्य के नीतिसार) में किया भी गया है। वास्तव में, एक या दूसरे रूप में ग्राम पंचायतों की संस्था ने लगभग पूरे भारत में और उसके लंबे इतिहास में निर्वाध रूप से जारी रखी है। (कश्यप 2018) ग्रामीण परिषदों की मुख्य जिम्मेदारियाँ गाँव की रक्षा, विवादों का निपटारा, सरकार के लिए राजस्व का संग्रह, सार्वजनिक उपयोगिता के लिए कार्यों का संगठन एक ट्रस्टी के रूप में कार्य करना था। न्यायिक समारोह का ग्राम सभा की सहायता से संचालन शाही अधिकारियों द्वारा किया जाता था। कुछ मामलों में ग्राम विधान सभा अकेले निर्णय सुनाती है और सजा सुनाती है (मजूमदार 1948) भारत के सुदूर दक्षिण में सबसे कम प्रशासनिक इकाइयाँ कुर्रम (गाँवों का संघ) और ग्राम (गाँव) थीं, जिनमें से प्रत्येक में खुद का मुखिया होता था, जिसे महासभा जैसी विधानसभाओं द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी। मुगलकाल में, एक कोतवाल या नगर गवर्नर था जो मजिस्ट्रेट, पुलिस और राजकोषीय मामलों की देखभाल करता था। उसके पास बहुत शक्ति और अधिकार था। उन्होंने व्यापारियों के लिए कुछ सरल नगरपालिका सेवाएं बनाए रखीं जिनकी आय पर यह आय निर्भर थी (रामचंद्रन 2006) मध्ययुगीन काल में शहरों और कस्बों में कई राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद, गाँवों में पंचायतों की व्यवस्था जारी नहीं रही। यद्यपि मुगलों के अधीन उनकी न्यायिक शक्तियां परिलक्षित थीं, स्थानीय मामलों को ऊपर से अनियमित बना दिया गया था और ग्राम अधिकारी और नौकर मुख्य रूप से पंचायतों के लिए जवाबदेह थे (मैथ्यू 2010)

औपनिवेशिक काल

प्राचीन काल की स्थानीय सरकार इंग्लैंड में अपने अनुभव के आधार पर ब्रिटिशों द्वारा लाई गई चीजों से अलग थी, जो कि वास्तविक मतदाता की इकाइयों के रूप में जिम्मेदार थी और उनके मतदाताओं के प्रति जवाबदेह थी। यह अंग्रेजों द्वारा महसूस किया गया था कि भारत की संस्कृति तक हर चीज में विविधता से भरी थी। लॉर्ड लॉरेंस का संकल्प था कि देश के व्यवसाय को जितना संभव हो सके उतना लोगों के हाथों में छोड़ दिया जाए (रामचंद्रन 2006) 1824 में, मद्रास के गवर्नर थॉमस मुनरो ने मद्रास के गांव में नियमित पुलिस में शामिल करने के प्रस्ताव पर आपत्ति जताई थी। इससे पहले, कलकत्ता, बॉम्बे और मद्रास के प्रेसीडेंसी कस्बों में, जस्टिस ऑफ़ पीस को भूमि और घरों पर कर लगाने और सड़कों की सफाई, पुलिस और रखरखाव के लिए नियुक्त किया गया था। 1845 के अधिनियम XI द्वारा, प्रशासनिक शक्ति को कंजरवेंसी बोर्ड में निहित किया गया था जिसमें दो यूरोपीय और तीन भारतीय न्यायधीश शामिल थे, जिनमें वरिष्ठ पुलिस मजिस्ट्रेट थे। 1856 में, अधिनियम XIV कलकत्ता, मद्रास और बॉम्बे शहरों के संरक्षण के लिए बनाया गया था, इनमें से प्रत्येक शहर में तीन आयुक्त थे। कलकत्ता में न्यायलयों को बहुत व्यापक अधिकार दिए गए थे। बॉम्बे में एक विशेष नियंत्रक लेखा नियुक्त किया गया। शहर के बकाया को वसूलने के लिए स्थानीय प्राधिकारी को शक्ति दी गई थी, जबकि शहर को पानी के निर्माण की लागत का हिस्सा देना था। मद्रास शहर को प्रत्येक वार्ड की देखभाल के लिए नियुक्त किए गए चार पार्षदों के साथ आठ वार्डों में विभाजित किया गया था। यह 1870 में था कि वायसराय, लॉर्ड मेयो को अपनी परिषद द्वारा सत्ता के विकेंद्रीकरण के लिए लोगों की मांगों को पूरा करने में प्रशासनिक दक्षता लाने और मौजूदा शाही संसाधनों के वित्त को जोड़ने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसके लिए कोई विरोध नहीं करेगा। देश की बढ़ती जरूरतों (वेंकटरांगैया और

पट्टाभिराम 1969) लेकिन, सच्चे अर्थों में, लॉर्ड रिपन (1882) सबसे पहले औपनिवेशिक शासन के दौरान स्थानीय स्वशासन के विकेंद्रीकरण की शुरुआत की। उनका संकल्प था की स्थानीय स्वशासी निकायों के एक बड़े नेटवर्क की स्थापना के माध्यम से प्रशासन के विकेंद्रीकरण और नियंत्रण स्थापित करने लिए था। फिर भी, रिपन की योजनाएं अधिक सफल नहीं हो सकीं। इसके अलावा, समितियों, आयोगों और अधिनियमों के रूप में आगे ब्रिटिश शासन द्वारा काफी प्रयास किये गये। सन 1907 में, सी. ई.एच. हॉबहाउस की अध्यक्षता ब्रिटिश सरकार ने विकेंद्रीकरण पर रॉयल कमीशन का गठन किया, जिसने ग्रामीण स्तर पर पंचायतों के महत्व को पहचाना। इसने सिफारिश की, 'यह विकेंद्रीकरण के हितों में सबसे अधिक वांछनीय है, प्रशासन के स्थानीय कार्यों के साथ लोगों को जोड़ने के लिए कि स्थानीय ग्राम मामलों के प्रशासन के लिए ग्राम पंचायतों के गठन और विकास का प्रयास किया जाना चाहिए' (मालवीय 1956) भले ही सरकार ने सिफारिश स्वीकार कर ली और पंचायतों के गठन के लिए आदेश दिया, लेकिन यह कुशल संस्थानों के रूप में प्रदर्शन करने में विफल रहा। वर्ष 1909 में, लाहौर में कांग्रेस के चौबीसवें सत्र ने एक संकल्प अपनाया कि सरकार जल्द से जल्द इसके लिये कदम उठाए। वर्ष 1915 में, प्रायोगिक आधार पर चयनित क्षेत्रों में प्रांतीय सरकारों द्वारा स्थानीय स्व-सरकार का गठन करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया गया था। इसने पंचायतों को करों को लागू करने की शक्ति के साथ पंचायतों को सशक्त बनाने की सिफारिश की। कुछ अन्य सिफारिशें भी की गईं लेकिन वह लागू नहीं हो सका। फिर 1918 का भारत सरकार का प्रस्ताव आया, जिसमें गाँव की आबादी की प्रगति की दर में तेजी लाने के लिए कानून बनाने पर जोर दिया गया। इसने सिफारिश की कि नगरपालिका और ग्रामीण बोर्डों के अलावा कानून को अलग किया गया। ब्रिटिश संसद ने एक अधिनियम अधिनियम, 1919 पारित किया, जिसके तहत स्थानीय स्वशासन को प्रांतीय हस्तांतरित

विषयों में शामिल किया गया। इस अधिनियम में स्थानीय स्वशासन को पूरी तरह से प्रतिनिधित्वा देने सम्बंधित सुधार ने सुझाव दिया था और जहां तक संभव हो, बाहर के नियंत्रण के लिए उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता रखना था। (खन्ना 1972)

इसके बाद, 1919 से 1925 तक ग्राम पंचायत अधिकारों की स्थापना और स्वतंत्रता प्राप्ति तक कई अधिनियम पारित किए गए, लेकिन ये सभी केवल कागजों तक ही सीमित थे, क्योंकि प्रांत अपनी शक्तियों के साथ बंटवारा नहीं करना चाहते थे। 1935 में, ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत सरकार अधिनियम, 1935 पारित किया गया था। जिसे 1937 में मंत्रयाली पद्धति से जोड़ा गया और एक स्वतंत्र कार्यालय की स्थापना की गयी। इस अधिनियम ने स्थानीय निकायों को वास्तव में अपने प्रतिनिधि बनाने के लिए कानून बनाया। (मजूमदार और सिंह 2007) लेकिन, एक बार फिर, द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने से पंचायती व्यवस्था से सम्बंधित कानून अधर में लटक गये। ब्रिटिश राज के समय सरकारी निरंकुशता विद्यमान थी। जिस कारण ग्राम पंचायतों को इस अवधि के दौरान पूरी तरह से उपेक्षित महसूस करना पड़ा। स्वतंत्रता-पूर्व की अवधि तक, स्थानीय स्व-सरकारें वास्तव में कोई मान्य प्रतिनिधि नहीं था और न ही उन्हें कोई कानूनी अधिकार नहीं सौंपा गया था। फिर भी, अंग्रेजों द्वारा निर्धारित प्रारूप भारत में पंचायती राज को आकार देने में बहुत सहायक रहा।

उत्तर-औपनिवेशिक काल

ग्रामीण स्थानीय स्वशासन के विकास के संबंध में ब्रिटिश सरकार और नेताओं और नागरिकों पर वर्षों से बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव महात्मा गांधी का रहा है। अपने लेखन और भाषणों में, उन्होंने लोगों और सरकार का ध्यान आकर्षित किया और गाँव को पंचायत के साथ आत्मनिर्भर इकाई के रूप में गाँव के पुनर्निर्माण की तत्काल आवश्यकता के बीच रचनात्मक

गतिविधियों को प्रोत्साहित करने और समर्थन करने में केंद्रीय भूमिका निभाई। उनके अनुसार, 'पंचायत की शक्ति अधिक से अधिक, सच्चे लोकतंत्र के रूप में लोगों के लिए बेहतर' प्रत्येक गाँव के लोगों द्वारा नीचे से काम करना होगा (खन्ना 2004)। गाँव का स्वराज गाँधी की दृष्टि का ही प्रतिरूप था। स्वतंत्र भारत में यह संसदीय लोकतंत्र के लिए और सीमित उत्पादन और संसाधनों, उपभोग और प्रौद्योगिकियों की सीमित क्षमता के कारण शासन में व्यापक बदलाव उस समय संभव नहीं थे। आंबेडकर ने इस सुझाव का विरोध किया, गाँव के भारत को अलग तरह से देखते हुए और यह मानते हुए कि भविष्य का रास्ता एक संवैधानिक लोकतंत्र में है। और इसे प्रभावित करने का एकमात्र तरीका राजनीति के संसदीय मॉडल को अपनाना था वह पंचायती राज संस्थाओं की शुरुआत के विरोध में था। संविधान सभा की ड्राफ्ट संविधान पर की बैठकों में बोलते हुए, उन्होंने उन लोगों की कड़ी आलोचना की। उन्होंने गाँवों को एक गणराज्य के रूप में उल्लेखित किया और तर्क दिया कि, लेकिन आंबेडकर का मानना था कि कि ये गाँव जातिवाद और सामाजिक कुरीतियों की वजह से गणतंत्र भारत के विनाश के रूप में रहे हैं। गाँव क्या है, लेकिन स्थानीयता का एक जातिगत, अज्ञानता, संकीर्णता और सांप्रदायिकता का एक खंड क्षेत्र मात्र है? हालाँकि, उन्होंने बाद में अपने विचार से समझौता कर लिया था। तत्पश्चात मूल भारतीय संविधान के लक्ष्यों में से एक के रूप में ग्राम स्तर पर पंचायतों की स्थापना की गई थी। संवैधानिक प्रावधान में कहा गया है: 'राज्य ग्राम पंचायतों को व्यवस्थित करने के लिए कदम उठाएंगे और उन्हें ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेंगे जो उन्हें स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हो' (अनुच्छेद 40, भाग- IV- निर्देश में राज्य नीति के सिद्धांत) इसलिए स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में विभिन्न कानूनों के माध्यम से ग्राम स्तर पर पंचायतों को स्थापित करने के प्रयास किए गए थे।⁵

स्वतंत्रता के बाद के युग में पंचायती राज की औपचारिक शुरुआत राष्ट्रव्यापी सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) के शुभारंभ से पता लगाया जा सकता है, जब विकास की प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों को शामिल करने के लिए एक प्रभावी संस्थागत तंत्र की आवश्यकता महसूस की गई थी। सामुदायिक विकास की दृष्टि में सामाजिक सद्भाव, आर्थिक, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, और मनोरंजन सब कुछ शामिल था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम (सीडीपी) ने सामंजस्यपूर्ण समुदाय में सभी को शामिल करके और संघर्षों का अंत करके राजनीतिक शांति का वादा किया। इसने विकास की इच्छा को बढ़ाकर और आम भागीदारी (बाजपेयी 1997) की पुनरावृत्ति करके आर्थिक समृद्धि का वादा किया। लेकिन कार्यक्रम की गिरावट अचानक बढ़ रही थी और एक दशक के बाद और सामुदायिक विकास कार्यक्रम में बहुत विश्वास और भारी निवेश के बाद, जोर कृषि को आधुनिक बनाने, ग्रामीण संस्थानों, पंचायतों, सहकारी और भूमि सुधारों के निर्माण में बदल गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम सीडीपी को चालू रखने में खाद्यान्न की बढ़ती कमी एक महत्वपूर्ण मुद्दा था। इस प्रक्रिया के तहत लगभग पचपन सामुदायिक परियोजनाएं शुरू की गईं। प्रत्येक विकास खंड में 100-120 गाँव और तीन लाख की आबादी शामिल थी। प्रत्येक ब्लॉक में कृषि, पशुपालन, सहयोग और ग्राम स्तर के श्रमिकों के तकनीकी अधिकारी था। तीन साल के लिए ब्लॉक का विचार महिलाओं के समूहों को कृषि सलाह, सामाजिक कल्याण, और सामान्य ग्रामीण उत्थान की गतिविधियों से लेकर साक्षरता और शिक्षा की एक श्रेणी में उनके विकास में लोगों की भागीदारी को बढ़ावा देना था। (रामचंद्रन 1996) सामुदायिक विकास कार्यक्रम मुख्य रूप से लोगों की भागीदारी की कमी के कारण अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रहा।⁶

बलवंत राय मेहता समिति

वास्तव में, पंचायती राज पर नीति बलवंतराय मेहता समिति (1957) की सिफारिशों से निकली, जिसमें कहा गया था कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम (सीडीपी) और राष्ट्रीय विस्तार सेवा (एनईएस) लोगों की पहल को बढ़ावा देना था। इसलिए स्थानीय स्तर पर चुने हुए प्रतिनिधियों को ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रशासन को सौंपने के लिए मेहता समिति की सिफारिशों में आर्थिक विकास की चिंता पर जोर दिया गया था। इन संस्थानों की शुरुआत के पीछे के राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्य राजनीतिक नेताओं के बयानों से स्पष्ट हो सकते हैं, जिनका उपयोग योजना के उद्घाटन के समय किया गया था। जवाहरलाल नेहरू ने 1959 में जब गांधी जयंती पर राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज की शुरुआत की, तो कहा, “गाँव का लाखों लोगों का उत्थान करना कोई साधारण काम नहीं है। धीमी प्रगति का कारण आधिकारिक मशीनरी पर हमारी निर्भरता है। लेकिन यह काम तभी किया जा सकता है, जब जनता अपने हाथों में जिम्मेदारी को स्वंगं ले। प्रभावी शक्ति उन्हें सौंपनी होगी”। (नारायण 1996) भारत के जाने-माने नेताओं में से एक, जयप्रकाश नारायण ने कहा कि ‘यह बहुत संतोष की बात है कि हमारे देश में पंचायती राज के आकार में भागीदारी लोकतंत्र की नींव रखने के लिए एक शुरुआत की गई है, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण बलवंतराय मेहता समिति ने लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की योजना की स्थापना की सिफारिश की, जिसे अंततः पंचायती राज व्यवस्था के रूप में जाना गया। इसके द्वारा की गई विशिष्ट सिफारिशें थीं ग्रामीण स्तर पर त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था-ग्राम पंचायत की स्थापना, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति, जिला स्तर पर जिला परिषद के गठन की सिफारिश की। (मेहता 1989)

पंचायत समिति कार्यदायी संस्था होनी चाहिए जबकि जिला परिषद सलाहकार, समन्वय और पर्यवेक्षी संस्था होनी चाहिए।

- सभी योजना और विकासात्मक गतिविधियों को इन निकायों को सौंपा जाना चाहिए।
- इन संस्थानों को सत्ता और जिम्मेदारी का वास्तविक हस्तांतरण होना चाहिए।
- सभी निकायों के पास पर्याप्त संसाधन हैं ताकि वे अपनी जिम्मेदारियों का सही ढंग से निर्वहन कर सकें।

इन एजेंसियों के माध्यम से सभी सामाजिक और आर्थिक विकास कार्यक्रमों को सूचीबद्ध किया गया। शक्ति के विघटन और फैलाव को प्रभावित करने के लिए एक प्रणाली विकसित की जानी चाहिए। स्टडी टीम की रिपोर्ट में कहा गया कि , 'ग्रामीण विकास जिम्मेदारी और शक्ति के बिना प्रगति नहीं कर सकता। सामुदायिक विकास तभी वास्तविक हो सकता है जब समुदाय अपनी समस्याओं को अच्छी तरह से समझता हो। अपनी जिम्मेदारियों का एहसास करता हो अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से आवश्यक शक्ति का उपयोग करता हो। स्थानीय प्रशासन पर निरंतर और बुद्धिमान सतर्कता बनाए रखता हो। इस उद्देश्य के साथ, हम वैधानिक ऐच्छिक स्थानीय निकायों की शीघ्र स्थापना और उन्हें आवश्यक संसाधनों, शक्ति और अधिकार के प्रति समर्पण की सलाह देते हैं। इन सिफारिशों को जनवरी 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा स्वीकार किया गया था। राजस्थान में नागौर जिले में 2 अक्टूबर 1959 को शुरू की गई पंचायती राज संस्था की कल्पना एक ऐसे साधन के रूप में की गई जिसके माध्यम से ग्रामीण समाज के सभी वर्गों के लोग और सामूहिक रूप से काम करने में सक्षम होंगे। देश के आम जनता का शासन में भागीदारी उनकी समस्याओं को हल करने के लिए यह एक ऐतिहासिक कदम था। भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू

ने राजस्थान में पंचायती राज का उद्घाटन करते हुए कहा था, 'हमारी पंचायतों में सभी को समान माना जाना चाहिए और पुरुषों / महिलाओं और उच्च / निम्न के बीच कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए' (त्यागी और सिन्हा 2011)। पंचायती राज को 1959 में पेश किए जाने के समय दूरगामी महत्व का राजनीतिक और प्रशासनिक नवाचार माना जाता है। इसे लोकप्रिय भागीदारी के एक तंत्र के रूप में दर्शाया गया था। पंचायती राज निकायों से ग्रामीण इलाकों में राजनीतिक चेतना जगाने और ग्रामीण भारत में लोकतांत्रिक प्रक्रिया को लागू करने की अपेक्षा की गई थी। हालाँकि, पंचायती राज ने अपनी स्थापना के बाद से कई उतार-चढ़ाव का अनुभव किया है। 1965 के बाद, 1970 के दशक के अंत तक पंचायतों में ठहराव और गिरावट आई⁷

भारत में पंचायती राज के लिये पहली बार चुनाव 1960 में करवाये गये थे। पंचायती राज में महिला वर्ग को शामिल करने की पहल बलबन्त राय मेहता समिति ने की थी। राज्य के रूप में राजस्थान सरकार ने 1963 में सादिक अली की अध्यक्षता में एक समिति गठित की, जिसका उद्देश्य पंचायती राज की कमियां उजागर कर सुधार हेतु सुझाव देना रहा था। समिति ने 1964 अपनी रिपोर्ट पेश की। फिर राजस्थान सरकार के द्वारा गिरधारी व्यास की अध्यक्षता में सन् 1973 में उच्च स्तरीय पंचायती राज समिति गठित की गई। अपनी सिफारिशों में जिला परिषदों के कार्य और दायित्वों को मजबूत करना रहा। केन्द्रीय स्तर पर इसे सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मंत्रालय द्वारा निदेशन एवं प्रोत्साहन दिया जा रहा था। केन्द्रीय परिषद् अपने प्रतिवर्ष के सम्मेलनों में पंचायती राज व्यवस्था की प्रगति की समीक्षा करती थी। केन्द्र में सामुदायिक विकास का राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किया था। जिसका मुख्य कार्य स्थानीय स्वायत्त शासन का अध्ययन शोध करना था एवं प्राप्त परिणामों के आधार पर उचित परामर्श का कार्य करती थी। पंचायती राज व्यवस्था को प्रोत्साहन देने के लिए ग्रामीण विकास विभाग

द्वारा अखिल भारतीय पंचायती राज परिषद् की भी स्थापना की थी। किन्तु इसका 1967 में अन्त कर दिया था। सामुदायिक विकास एवं पंचायती राज में कृषि उत्पादन पर अधिक बल दिया जाता था। अतः कृषि एवं खाद्य मंत्रालय से इसका तालमेल बिठाने के लिए 1966 में सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मंत्रालय को केबिनेट स्तर पर कृषि एवं खाद्य मंत्रालय के साथ सम्बद्ध कर दिया गया था। अतः केन्द्रीय स्तर से पंचायती राज व्यवस्था को पूर्ण सफल बनाने के पूरे-पूरे प्रयास किए गये थे। 1959-60 में जब विभिन्न राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था लागू किया गया था, तब मेहता समिति की रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि राज्य अपनी परिस्थितियों के अनुसार इसे लागू किया गया। केन्द्र द्वारा त्रि-स्तरीय व्यवस्था को लागू किया गया था किन्तु सभी राज्यों में एक समान स्वरूप विकसित नहीं हुआ था। बल्कि कुछ परिवर्तित रूप भी अपनाये थे।⁸

राज्य स्तर पर पंचायती राज्य संस्थाएँ

1. जम्मू कश्मीर में एक स्तरीय ग्राम पंचायतें
2. केरल में एक स्तरीय ग्राम पंचायतें
3. मणिपुर में एक स्तरीय ग्राम पंचायतें
4. त्रिपुरा में एक स्तरीय ग्राम पंचायतें
5. सिक्किम में एक स्तरीय ग्राम पंचायतें
6. असम में द्वि-स्तरीय व्यवस्था ग्राम पंचायतें
7. हरियाणा में द्वि-स्तरीय व्यवस्था पंचायत समिति

8. कर्नाटक में द्वि-स्तरीय व्यवस्था पंचायत समिति
9. उड़ीसा में द्वि-स्तरीय व्यवस्था पंचायत समिति
10. मध्य प्रदेश में द्वि-स्तरीय व्यवस्था पंचायत समिति
11. बिहार में त्रि-स्तरीय व्यवस्था ग्राम पंचायतें
12. उत्तर प्रदेश में त्रि-स्तरीय व्यवस्था पंचायत समिति
13. राजस्थान में त्रि-स्तरीय व्यवस्था जिला परिषद्
14. हिमाचल प्रदेश में त्रि-स्तरीय व्यवस्था जिला परिषद्
15. पंजाब में त्रि-स्तरीय व्यवस्था जिला परिषद्
16. महाराष्ट्र में त्रि-स्तरीय व्यवस्था जिला परिषद्
17. आन्ध्र प्रदेश में त्रि-स्तरीय व्यवस्था जिला परिषद्
18. तमिलनाडू में त्रि-स्तरीय व्यवस्था जिला परिषद्
19. गुजरात में त्रि-स्तरीय व्यवस्था जिला परिषद्
20. पश्चिम बंगाल में चार-स्तरीय व्यवस्था ग्राम पंचायत
21. नागालैण्ड में कोई व्यवस्था नहीं/ कोई व्यवस्था नहीं परम्परागत परिषद्
22. मिजोरम में परम्परागत परिषद् परम्परागत परिषद्
23. मेघालय में परम्परागत परिषद् परम्परागत परिषद्

पंचायती राज व्यवस्था के महत्व को देखते हुए पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने हेतु तथा आवश्यक सुधार करने के लिए साठ के दशक में अलग-अलग राज्यों ने अपने यहां अलग-अलग समितियां नियुक्त की थीं। कई समिति के सुझावों पर राज्यों ने अमल किया एवं पंचायती राज व्यवस्था में आवश्यक संशोधन भी किये। विभिन्न राज्यों की महत्वपूर्ण समितियां निम्न थीं:-

पंचायती राज से सम्बन्ध रखने वाली राज्य समितियां

आन्ध्र प्रदेश पुरुषोत्तम पाई समिति 1964

रामचन्द्र रेड्डी समिति 1965

नरसिम्हन समिति 1972

कर्नाटक बसप्पा समिति 1963

राजस्थान माथुर समिति 1963

सादिक अली समिति 1963

गिरधारी लाल समिति 1972-73

उत्तर प्रदेश गोविन्द सहाय समिति 1959

मूर्ति समिति 1965

महाराष्ट्र नाईक समिति 1961

बोनगीवार समिति 1963

गुजरात पारिख समिति 1961

यद्यपि पंचायती राज संस्थानों के विकास के सम्बन्ध में सम्पूर्ण भारत देश में सकारात्मक दृष्टिकोण था एवं विविध राज्यों द्वारा गठित समितियों द्वारा समय-समय पर सुधारात्मक अनुशासनों की।

अशोक मेहता समिति

पंचायती राज की कार्य योजना पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान, विशेष रूप से पहली तीन योजनाओं में संतोषजनक थी। जातिगत तनाव में कमी ध्यान देने योग्य थी और कमजोर वर्गों को भी इन निकायों में प्रतिनिधित्व मिल रहा था (मिश्रा और सिंह 2003) फिर भी, कई क्षेत्रों में स्थानीय सरकारों के कामकाज को और बेहतर बनाने के लिए विभिन्न समितियों को नियुक्त किया गया। विभिन्न अध्ययन टीमों की सिफारिशों पर, समय-समय पर परिवर्तन किए गए थे। न्याय पंचायतों के गठन के अलावा, संसाधन आधार को मजबूत करने, ग्राम सभा को महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करने आदि की सिफारिशें पंचायती राज की मशीनरी को मजबूत करने के लिए की गई थीं। लेकिन जब मध्यमार्गी प्रवृत्ति ने विकेंद्रीकृत लोकतंत्र या पंचायती राज के पूरे अर्थ को नष्ट कर दिया । राष्ट्रीय आपातकाल ने स्थानीय निकायों से सभी शक्ति ले ली जो पंचायती राज के विकास के लिये महत्वपूर्ण थीं। 1977 में आपातकाल हटा लिया गया और जनता पार्टी सत्ता में आ गई। पंचायती राज व्यवस्था की दयनीय स्थितियों को देखने के बाद, पंचायती राज में रुचि को पुनर्जीवित करने के लिए अशोक मेहता (1977) की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त करने का निर्णय लिया गया। इस प्रकार अशोक मेहता समिति की नियुक्ति ने पंचायती राज के विकास में महत्वपूर्ण मोड़ दिया। समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में व्याप्त कमियों का निदान किया और अपनी रिपोर्ट पेश

की जिसमें प्रशासन के विकेंद्रीकरण को एक आवश्यकता के रूप में सिफारिश की गई थी। इसे 'पंचायती राज के लिए नया दृष्टिकोण' कहा जाता था। शक्ति और लोगों की भागीदारी लेकिन ग्रामीण विकास का समर्थन करना। समिति की मुख्य सिफारिशें थीं:

(क) पंचायती राज की त्रि-स्तरीय प्रणाली को दो-स्तरीय प्रणाली द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए: जिला स्तर पर जिला परिषद और इसके नीचे, मंडल पंचायत जिसमें 15000 से 20000 की आबादी वाले गांवों का समूह शामिल है।

(ख) राज्य स्तर से नीचे लोकप्रिय पर्यवेक्षण के तहत विकेंद्रीकरण के लिए पहला जिला होना चाहिए।

(ग) जिला परिषद को कार्यकारी निकाय होना चाहिए और जिला स्तर पर योजना के लिए जिम्मेदार बनाया जाना चाहिए।

(घ) पंचायत चुनाव के सभी स्तरों पर राजनीतिक दलों की आधिकारिक भागीदारी होनी चाहिए।

(ण) पंचायत राज संस्थाओं के पास अपने स्वयं के वित्तीय संसाधनों को जुटाने के लिए कराधान की अनिवार्य शक्तियां होनी चाहिए।

(च) जिला-स्तरीय एजेंसी और विधायकों की समिति द्वारा नियमित रूप से सामाजिक अंकेक्षण किया जाना चाहिए ताकि यह जांचा जा सके कि क्या कमजोर सामाजिक और आर्थिक समूहों के लिए आवंटित धन वास्तव में उन पर खर्च किया गया है।

(छ) राज्य सरकार को पंचायती राज संस्थाओं को नहीं देना चाहिए। अनिवार्य मामले में, चुनाव की तारीख से 6 महीने के भीतर चुनाव होना चाहिए।

(ज) न्याय पंचायतों को विकास पंचायतों से अलग निकायों के रूप में रखा जाना चाहिए। उन्हें एक योग्य न्यायाधीश द्वारा अध्यक्षता की जानी चाहिए।

(झ) मुख्य चुनाव आयुक्त के परामर्श से राज्य के मुख्य निर्वाचन अधिकारी को पंचायती राज चुनावों का आयोजन और संचालन करना चाहिए।

(यं) विकास कार्यों को जिला परिषद को हस्तांतरित किया जाना चाहिए और सभी विकास कर्मचारियों को इसके नियंत्रण और पर्यवेक्षण के तहत काम करना चाहिए।

(ट) पंचायती राज के लिए स्वैच्छिक एजेंसियों को लोगों का समर्थन जुटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए।

(ठ) पंचायती राज मंत्री को राज्य मंत्री परिषद में नियुक्त किया जाना चाहिए ताकि पंचायती राज संस्थाओं के मामलों की देखभाल की जा सके।

(ड) SC और ST के लिए सीटें उनकी जनसंख्या के आधार पर आरक्षित होनी चाहिए।

हालाँकि, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यों ने इस मॉडल का प्रयोग किया, लेकिन केंद्र और राज्य स्तर की सरकारों दोनों में बदलाव के साथ, रिपोर्ट को पूरी तरह से लागू नहीं किया जा सका। सन 1980 के दशक की शुरुआत से बहस का एक महत्वपूर्ण मुद्दा की पंचायती राज व्यवस्था एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में मान लिया गया।

योजना आयोग ने 1983 में एक कार्यकारी समूह नियुक्त किया, जिसे हनुमंथा राव समिति के रूप में जाना जाता है, जिसने स्थानीय स्तर पर सार्वजनिक भागीदारी की आवश्यकता पर बल दिया। छठी योजना, और सातवीं के दौरान, विकेंद्रीकरण की नीतियों और अधिक प्रभावकारी बनाए जाने का प्रस्ताव किया गया था।

जी.वी.के. राव समिति

सन 1985 में प्रशासनिक व्यवस्था के साथ पंचायती राज निकायों की भूमिका और उनके संबंधों का अध्ययन करने के लिए जी.वी.के. राव समिति का गठन किया गया था। समिति की सिफारिशें इस प्रकार थीं:

नीति नियोजन और कार्यक्रम कार्यान्वयन के लिए जिले की मूल इकाई होनी चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं में नियमित चुनाव होने चाहिए। पंचायती राज निकायों को सक्रिय करना होगा और प्रभावी संगठन बनने के लिए सभी आवश्यक सहायता प्रदान करनी होगी। जिला स्तर पर और ब्लॉक और ग्राम स्तर पर पंचायती राज निकायों को ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की योजना, कार्यान्वयन और निगरानी का काम सौंपा जाना चाहिए। खंड विकास कार्यालय ग्रामीण विकास प्रक्रिया की रीढ़ की हड्डी होना चाहिए।

समिति ने महसूस किया कि जिला परिषद विभिन्न समितियों के माध्यम से काम कर सकती है। जिला परिषद के सभी सदस्यों की एक या दूसरी समिति में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए, आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार समिति के सदस्यों को स्वयं के बीच से जिला परिषद के सदस्यों द्वारा चुना जाना चाहिए। समिति का मानना था कि विकास शुरू होगा और जारी रहेगा, अगर बड़ी संख्या में लोगों ने भाग लिया। इसे प्राप्त करने के लिए, स्थानीय स्तर पर पर्याप्त शक्तियों और वित्तीय संसाधनों को आवश्यक माना गया। समिति ने यह भी महसूस किया कि स्थानीय निकायों के चुनाव नियमित रूप से होने चाहिए। (असलम 2007)

जी.वी.के. राव समिति (1985) का भी मत था कि जिला स्तर पर एक महत्वपूर्ण विकेंद्रीकरण होना चाहिए। यह सरकार, सार्वजनिक नेताओं, बुद्धिजीवियों द्वारा व्यापक रूप से मान्यता

प्राप्त है कि पंचायत राज संस्थान व्यवहार्य और उत्तरदायी लोगों के शरीर की स्थिति और गरिमा को प्राप्त करने में सक्षम नहीं हैं। इसके मुख्य कारण हैं 'नियमित चुनाव का अभाव, लंबे समय तक अधिवेशन, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं जैसे कमजोर वर्गों का अपर्याप्त प्रतिनिधित्व, शक्ति का अपर्याप्त विचलन और वित्तीय संसाधनों की कमी रही थी'। इसलिए केंद्र सरकार ने हाल ही में कहा है कि संविधान में पंचायती राज संस्थानों की कुछ बुनियादी और आवश्यक विशेषताओं को सुनिश्चित करने, उन्हें निरंतरता और शक्ति प्रदान करने की आवश्यकता है।

एलएम सिंघवी समिति

1986 में, राजीव गांधी की सरकार ने पंचायती राज संस्थानों के पुनरोद्धार के लिए एक समिति नियुक्त की, जिसमें एल.एम. सिंघवी की अध्यक्षता में जिसका शीर्षक 'लोकतंत्र और विकास' था। यह सिफारिश की:

गाँवों का पुनर्गठन, अधिक वित्तीय संसाधनों के स्रोतों की खोज, पंचायती राज संस्थानों के कामकाज के संबंध में विवादों को स्थगित करने के लिए प्रत्येक राज्य में न्यायिक न्यायाधिकरणों की स्थापना की सिफारिश की गयी। पंचायतों के संवैधानिककरण के लिए और इस प्रणाली को राष्ट्रीय लक्ष्य के समरूपीकरण और समाजीकरण के लिए एक वाहक के रूप में देखा। इसने सिफारिश की कि पंचायती राज संस्थानों को संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त, संरक्षित और संरक्षित किया गया। इस उद्देश्य से भारत के संविधान में एक नया अध्याय जोड़ा जाना चाहिए। यह उनकी पहचान और अखंडता को यथोचित और पर्याप्त रूप से पूरा करेगा। इसने पंचायती राज निकायों को नियमित, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए संवैधानिक प्रावधानों का भी सुझाव दिया। कुछ राज्यों ने अपनी राजनीतिक

विचारधाराओं के आधार पर संस्थानों को फिर से जीवंत और मजबूत करने के लिए सक्रिय कदम उठाए। लेकिन, अधिकांश लोगों में, अधः पतन की स्थिति बनी रही। समस्या को दूर इसलिये भी नहीं किया जा सका कि अधिकांश राज्यों में दशकों से नियमित चुनाव नहीं हुए थे। बिहार, तमिलनाडु, कर्नाटक और उत्तर प्रदेश (जहां पूर्व अधिसूचना अवधि में अंतिम चुनाव 1978, 1986, 1987 और क्रमशः 1988 में हुए थे) जैसे राज्य इस चुनाव असंगति के उदाहरण हैं। चुनाव न होना केवल विसंगति नहीं थी। पंचायती राज की उचित कार्यप्रणाली राज्य सरकारों के लोगों पर अधिक और लोगों के जनादेश पर कम निर्भर करती है। पंचायती राज निकायों ने वित्त और संसाधनों की कमी, अधिक केंद्रीकरण, सीमित अधिकार और अधिकार क्षेत्र या स्थानीय स्तर पर प्राधिकरण के समानांतर संरचनाओं के निर्माण से या तो अपंग कर दिया है। ऐसे संदर्भ में, स्वशासन और विकेंद्रीकृत लोकतंत्र के उपकरणों के रूप में उभरने से दूर, पंचायतें कृषि, वानिकी, कुटीर उद्योग, कल्याण, आदि जैसे कई क्षेत्रों में उन निकायों के लिए निर्धारित व्यापक विकासात्मक भूमिका को प्रभावी ढंग से नहीं निभा सकती हैं। ऐसा इसलिए था क्योंकि वे विकास कार्यक्रमों और प्रशासनिक संरचनाओं के साथ किसी भी सार्थक एकीकरण से वंचित थे। ये खंड उन राज्यों में पंचायतों में निर्णय लेने की प्रक्रिया से भी नहीं जुड़े हैं, जहां यह व्यवस्था कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में अच्छी तरह से काम कर रही है। सिस्टम मुख्य रूप से प्रमुख समूहों के लाभ के लिए काम कर रहा है।⁹

नवंबर 1989 राष्ट्रीय मोर्चा सरकार वी.पी. सिंह ने घोषणा की कि यह पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करने के लिए कदम उठाएगा। जून 1990 में, राज्य के मुख्यमंत्रियों की दो दिवसीय सम्मेलन की अध्यक्षता में प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह को पंचायती राज निकायों के सुदृढ़ीकरण से संबंधित मुद्दों पर चर्चा के लिए रखा गया था। सम्मेलन ने एक नए संवैधानिक संशोधन बिल

की शुरुआत के प्रस्तावों को मंजूरी दी। नतीजतन, एक संवैधानिक संशोधन बिल सितंबर 1990 में लोकसभा में पेश किया गया था। हालांकि सरकार के पतन के परिणामस्वरूप विधेयक पास होने से रह गया। फिर नए निर्वाचित प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने एक बार फिर विचार किया जिसमें पंचायती राज संस्थाओं के संवैधानिककरण का मामला प्रमुख था। सरकार ने 1991 में संविधान के 73 वें और 74 वें संविधान संशोधन की शुरुआत की। सितंबर 1991 में संविधान (73 वां संशोधन) विधेयक के रूप में एक व्यापक संशोधन पेश किया गया, जिसे बाद में एक विस्तृत परीक्षा के लिए दिसंबर 1991 में संसद की संयुक्त चयन समिति के पास भेजा गया। अंत में, आवश्यक संशोधनों को शामिल करने के बाद, संशोधन को 22 दिसंबर, 1992 को और 23 दिसंबर, 1992 को राज्यसभा में लोकसभा में सर्वसम्मति के साथ पारित किया गया। 73 वें संविधान संशोधन विधेयक को 20 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति की सहमति मिली और 17 राज्यों के अनुमोदन के पश्चात राष्ट्रपति ने इसे 20 अप्रैल 1993 को अपनी स्वीकृति प्रदान की तथा एक अधिसूचना द्वारा 24 अप्रैल 1993 का यह अधिनियम मिजोरम, मेघालय, नागालैंड, जम्मू कश्मीर, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र व मणिपुर के कुछ पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर संपूर्ण देश में लागू हो गया। संविधान 73 वां संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल, 1993 से लागू हुआ।

73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992

73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 तत्कालीन प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हा राव के कार्यकाल में प्रभावी हुआ। पंचायती राज विधेयक के संसद द्वारा पारित होने के बाद 20 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और 24 अप्रैल, 1993 से 73वाँ संविधान

संशोधन अधिनियम लागू हुआ। अतः 24 अप्रैल को 'राष्ट्रीय पंचायत दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

इस संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में भाग-9 जोड़ा गया था। मूल संविधान में भाग-9 के अंतर्गत पंचायती राज से संबंधित उपबंधों की चर्चा (अनुच्छेद 243) की गई है। भाग-9 में 'पंचायतें' नामक शीर्षक के तहत अनुच्छेद 243-243ण (243-243O) तक पंचायती राज से संबंधित उपबंध हैं।

73वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़ी गई और इसके तहत पंचायतों के अंतर्गत 29 विषयों की सूची की व्यवस्था की गई। ग्राम सभा (ग्राम सभा) की केंद्रीयता, विकेन्द्रीकृत शासन के लिए एक निर्णायक निकाय के रूप में स्थापित किया गया है। त्रि-स्तरीय शासन की संरचना, गाँव, ब्लॉक और जिले के में शक्ति का विकेंद्रीकरण किया गया। बीस लाख से कम आबादी वाले राज्यों के पास ब्लॉक स्तर को शुरू नहीं करने का विकल्प सुरक्षित रखा गया है। सभी स्तरों पर सभी सदस्यों के लिए सभी सीटों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव का होना है। इसके अलावा, ग्राम सभाओं (पंचायतों) के अध्यक्षों को मध्यवर्ती स्तर पर परिषदों (पंचायतों) का सदस्य बनाया जा सकता है, और मध्यवर्ती स्तर पर ब्लॉक परिषदों (पंचायतों) के अध्यक्षों को जिला स्तर पर सदस्य बनाया जा सकता है। संसद के सदस्य, विधानसभाओं के सदस्य और विधान परिषदों के सदस्य मध्यवर्ती और जिला स्तरों पर पंचायतों के सदस्य भी हो सकते हैं।

सभी पंचायतों में, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए उनकी आबादी के अनुपात में सीटें आरक्षित हैं। कुल सीटों में से एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। एससी और एसटी के लिए आरक्षित एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए भी आरक्षित होंगी।

सभी स्तरों पर पंचायतों के अध्यक्षों के कार्यालय राज्य में उनकी जनसंख्या के अनुपात में एससी और एसटी के पक्ष में आरक्षित होंगे। सभी स्तरों पर पंचायतों के अध्यक्षों के एक तिहाई कार्यालय भी महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। पंचायतों का कार्यकाल पांच साल का होता है। कार्यकाल समाप्त होने से पहले चुनाव संपन्न होने हैं। विघटन की स्थिति में छह महीने के भीतर चुनाव अनिवार्य रूप से होंगे। पुनर्गठित पंचायत पांच साल के कार्यकाल की शेष अवधि के लिए काम करेगी। इसकी समाप्ति से पहले किसी भी अधिनियम के संशोधन द्वारा मौजूदा पंचायतों को भंग करना संभव नहीं होगा। राज्य के किसी भी कानून के तहत अयोग्य घोषित किया गया व्यक्ति पंचायत का सदस्य बनने का हकदार नहीं होगा। निर्वाचन प्रक्रिया और मतदाता सूची तैयार करने के लिए अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण के लिए एक स्वतंत्र राज्य चुनाव आयोग की स्थापना की जाएगी। विकास योजनाओं की तैयारी और कार्यान्वयन में राज्य द्वारा शक्तियों और जिम्मेदारियों का विचलन। इन पंचायती राज संस्थानों की वित्तीय स्थिति को संशोधित करने और पंचायतों के बीच धन के वितरण पर राज्य को उपयुक्त सिफारिशें करने के लिए पांच साल में एक बार राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया है। यह ग्यारहवीं अनुसूची में (अनुच्छेद 243 जी) पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित सरकारी योजनाओं के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देने वाला संविधान भूमि सुधार, भूमि समेकन और मृदा संरक्षण के कार्यान्वयन के रूप में है (3) लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और वाटरशेड विकास (4) पशुपालन, डेयरी और मुर्गी पालन (5) मत्स्य (6) सामाजिक वानिकी और कृषि वानिकी (7) लघु वनोपज (8) खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों सहित लघु उद्योग (9) खादी, गाँव और कुटीर उद्योग (10) ग्रामीण आवास (11) पेयजल (12) ईंधन और चारा (13) सड़क, पुलिया, पुल, घाट, जलमार्ग और संचार के अन्य साधन (14) प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों सहित ग्रामीण विद्युतीकरण (15) गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोत (16)

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (17) शिक्षा, सहित, प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल (18) तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा (19) वयस्क और गैर-औपचारिक शिक्षा (20) पुस्तकालय (21) सांस्कृतिक गतिविधियाँ (22) बाजार और मेले (23) स्वास्थ्य और स्वच्छता, जिसमें अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और औषधालय शामिल हैं (24) परिवार कल्याण (25) महिला एवं बाल विकास (26) विकलांगों और मानसिक रूप से मंद लोगों के कल्याण सहित सामाजिक कल्याण (27) विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और जनजातियों के कमजोर वर्ग का कल्याण (28) सार्वजनिक वितरण प्रणाली (29) सामुदायिक संपत्ति का रखरखाव (पंचायती राज रिपोर्ट, 2001)

राज्य सरकारें अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नई पंचायती राज प्रणाली को अपनाने के लिए संवैधानिक बाध्यता है। नतीजतन, न तो पंचायतों का गठन और न ही नियमित अंतराल पर चुनावों का आयोजन राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है। अधिनियम के प्रावधानों को अनिवार्य और स्वैच्छिक दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। अधिनियम के अनिवार्य प्रावधानों को नई पंचायती राज व्यवस्था बनाने वाले राज्य कानूनों में शामिल किया जाना है। दूसरी ओर, स्वैच्छिक प्रावधान, राज्यों की दिशा में शामिल किए जा सकते हैं। इस प्रकार अधिनियम के स्वैच्छिक प्रावधान राज्यों के अधिकार को सुनिश्चित करते हैं कि नए पंचायती राज प्रणाली को अपनाते हुए भौगोलिक, राजनीतिक और प्रशासनिक जैसे अन्य कारकों को ध्यान में रखा जाए। (अरोड़ा और गोयल 2006)¹⁰

हालांकि, यह एक राज्य विषय (यानी स्थानीय सरकार) पर एक केंद्रीय कानून है, यह अधिनियम राज्यों के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करता है, जिन्हें पंचायतों के संबंध में पर्याप्त विवेकाधीन अधिकार दिए गए हैं। जमीनी स्तर के लोकतंत्र की कई कमियों को दूर

करने के लिए 73 वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम बनाया गया है। इसे लोगों की भागीदारी के क्षेत्र में कदम रखने वाला मिल का पत्थर माना जाता है। 1996 में एक PESA का कानून लाया गया जिसका प्रयोग अनुसूचित क्षेत्रों के लिये किया गया था। संसद में एक विधेयक पेश किया गया और पारित किया गया, जिसे 24 दिसंबर, 1996 को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकार किया गया। पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विस्तार) अधिनियम 1996 ने संविधान के अनुच्छेद 244 के खंड (एक) के तहत उल्लिखित अनुसूचित क्षेत्रों के लिए केंद्रीय अधिनियम को बढ़ा दिया है। आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, तेलंगाना और उड़ीसा पांचवीं अनुसूची क्षेत्रों के अंतर्गत आते हैं। (माहीपाल-2012)¹¹

73 वें संशोधन द्वारा लाए गए क्रांतिकारी परिवर्तनों के बावजूद यह कुछ गंभीर सीमाओं से ग्रस्त है। इस अधिनियम में ग्राम सभा की शक्ति और कार्यों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इस संशोधन में उल्लेख किया गया है कि ग्राम सभा उन कार्यों को करेगी जो राज्य विधायिका द्वारा उसे सौंपे जा सकते हैं। अधिकांश राज्यों द्वारा अधिनियमित किए गए कानूनों में ग्राम सभा से संबंधित प्रावधान एक शक्तिहीन निकाय में परिवर्तित करते हैं। जो ग्राम पंचायत द्वारा लिए गए निर्णयों पर नियमित रूप से बस अपनी मुहर लगाएगा। अधिनियम में एक और दोष यह है कि इसने राजनीतिक दलों की भूमिका को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया है। इसी तरह, यह पंचायती राज संस्थानों और स्थानीय स्तर की नौकरशाही के बीच संबंधों पर पूरी तरह से चुप है। दोनों के लिए परिभाषित भूमिकाओं की कमी के कारण, दोनों मुख्य रूप से उचित समन्वय की कमी के कारण अलग-अलग दिशाओं में चलते थे। यह पंचायती राज संस्थाओं की विफलता के महत्वपूर्ण कारणों में से एक था।¹² वर्तमान संशोधन में, संविधान ने इस समस्या का हल कर दिया है और राज्य विधानसभाओं को इससे निपटने के लिए उपयुक्त

प्रावधान बनाने के लिए अधिकृत किया है। चूंकि राज्य स्तर की नौकरशाही अधिक प्रभावी है और किसी भी नीति और कानून को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इसलिए यह अभी भी संदिग्ध है कि क्या स्थानीय स्तर की नौकरशाही और पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच संबंधों की समस्या ठीक से शामिल होगी या राज्य विधानसभाओं द्वारा सुचारू हो जाएगी। (मिश्र 2003)

पंचायती राज के महिलाओं की भूमिका

73 वां संविधान संशोधन पंचायती राज व्यवस्था आजादी के बाद के सबसे उल्लेखनीय सामाजिक और राजनीतिक सुधारों में से एक था। हालांकि, पंचायती राज संस्थानों को आज कई चुनौतीपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। सभी राज्यों में पंचायती राज में धन की उपलब्धता, कार्यों और कार्यवाहियों के निपटारा में वास्तविक विकास की कमी है। इसके साथ ही सामाजिक चुनौतियां भी शामिल हैं, जो समाज के हाशिए के वर्गों जैसे कि महिलाओं, दलितों और आदिवासियों से नेतृत्व को स्वीकार करना एक चुनौती रही हैं। इसके अलावा, ग्राम पंचायतों, ब्लॉक पंचायतों और जिला पंचायतों के बीच कर्तव्य और भूमिका का स्पष्टता का अभाव है। पंचायती राज प्रणाली की शुरुआत से अपेक्षित सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन लंबे समय तक अप्रभावित रहे। विशेष रूप से पंचायती राज के उद्देश्यों के बीच सामाजिक समानता, लैंगिक समानता और जमीनी स्तर पर बदलाव जैसे उद्देश्यों की परिकल्पना मुख्य रूप से नहीं की गई। इस संबंध में यह महसूस किया गया कि समाज में महिलाओं और अन्य पिछड़ी जातियों जैसे हाशिए पर रहने वाले समूहों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है और जमीनी स्तर की विकास प्रक्रिया में भाग लेना मुश्किल हो गया। विभिन्न अध्ययनों द्वारा पहचानी जाने वाली प्रणाली की कुछ कमियां इस प्रकार हैं: (क)

पंचायती राज प्रणाली की एकरूपता प्रत्येक राज्य को अद्वितीय इतिहास, परंपराओं और स्थानीय सरकार के परिणामस्वरूप संरचनाओं को कमजोर करती है; (ख) संसद और राज्य विधायकों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व अक्सर प्रतिशोधात्मक हो जाता है। विशेष रूप से वोट प्राप्त करने के लिए विधानसभाओं और पंचायती राज प्रतिनिधियों के बीच हितों का टकराव होता है; (ग) अधिनियम स्पष्ट रूप से राजनीतिक दलों की भूमिका को परिभाषित नहीं करता है। यह उल्लेख नहीं करता है कि राजनीतिक दल अपनी औपचारिक क्षमता में संलयन क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं; (घ) राज्यों द्वारा पीआरआई के विघटन के लिए अधिनियम विशिष्ट आधार नहीं देता है। इससे राज्यों को राजनीतिक विचारों पर पीआरआई को प्रभावित करने की गुंजाइश रहती है।¹³

पंचायतें ग्रामीण विकास के बदलते परिदृश्य में स्थानीय प्रशासन की संस्थाओं के रूप में एक भूमिका निभा रहा है। कुछ सकारात्मक रुझान इस प्रकार हैं: (i) पंचायती राज को कई विकासात्मक कार्यक्रमों को लागू करने के लिए सर्वोत्तम उपलब्ध विकल्प के रूप में पहचाना जाता है कार्यक्रमों के त्वरित कार्यान्वयन के लिए प्रत्यक्ष धन भी उपलब्ध कराया जा रहा है। (ii) चूंकि विभिन्न मंत्रालयों और एजेंसियों ने अंतिम व्यक्ति तक पहुंच प्रदान करके विकासात्मक कार्यक्रमों में संतुष्टि दृष्टिकोण को अपनाना शुरू कर दिया है, पंचायती राज संस्थान ने इसमें लाभार्थी की पहचान, योजना और कार्यान्वयन में एक बड़ी भूमिका निभानी शुरू कर दी है। (iii) पंचायती राज स्तर पर सामाजिक अंकेक्षण से पता चला है कि लोगों की भागीदारी गुणात्मक और प्रभावी रूप से स्थानीय समस्याओं को हल करने से है। (iv) पंचायती राज के प्रदर्शन का मूल्यांकन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा किया जाता है और उन्हें पुरस्कार दिए जाते हैं, जिसके कारण पंचायती राज संस्था में प्रेरणा बढ़ी है। इसके कारण, कई वर्षों में, कई ग्राम पंचायतें आती हैं, जिन्हें दूसरों के लिए पंचायत और रोल

मॉडल के रूप में मान्यता दी जाती है। वे मानव और वित्तीय दोनों संसाधनों को परिवर्तित करने में सफल रहे हैं और सामाजिक और आर्थिक इक्विटी को बढ़ावा देने में सफल रहे हैं। (कुन्नुमक्कल 2013) इसके अलावा, सभी कमियों के बावजूद, 73 वें संशोधन द्वारा फैलाए गए जमीनी स्तर पर लोकतंत्र स्थापित करता रहेगा। संप्रभु सत्ता वास्तव में लोगों और गांधीवादी सपने पूरा किया जा सकता है (कश्यप 2008) कुछ दशकों में, ग्राम पंचायतों ने लोकतांत्रिक शासन की एक प्रणाली के रूप में और लोगों के सशक्तीकरण के लिए एक संस्थागत ढांचे के रूप में काम किया है, जिससे उन्हें न केवल आवाज, बल्कि पसंद की शक्ति भी मिलती है, ताकि वे महसूस कर सकें उनकी स्थिति के लिए यह व्यवस्था सबसे उपयुक्त है। यह आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय लाने की संसाधनों और शक्ति के साथ स्वायत्त इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए निर्वाचित निकायों को शक्तियों के अधिकतम विकेंद्रीकरण पर निर्भर करता है।¹⁴

ग्रामीण विकास योजनाओं का कार्यान्वयन विकेंद्रीत पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ही होता रहा है और पिछले तीन दशकों में, 1996 से 2022 तक पंचायत प्रणाली ने भारतीय शासन प्रणाली में बहुत बदलाव लाया है। सबसे महत्वपूर्ण विकास यह हुआ है कि भारतीय राजनीति का लोकतांत्रिक आधार बहुत विस्तृत हो गया है।

पंचायती राज संस्थान उत्तर प्रदेश और उत्तर प्रदेश (यूपी) में 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 20 करोड़ की आबादी वाला देश का सबसे अधिक आबादी वाला राज्य है। इसमें 2, 40,928 वर्ग किमी और देश के कुल क्षेत्रफल का 7.3 प्रतिशत हिस्सा शामिल है, यह भारत का क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से पांचवां सबसे बड़ा राज्य है। राज्य की लगभग 76 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। प्रति पंचायत में 3,194 व्यक्तियों की

औसत आबादी के साथ, यूपी के अधिकांश गाँव आकार में छोटे हैं। आजादी से पहले, प्रांतीय सरकार ने 1920 में पहला ग्राम पंचायत अधिनियम बनाया था जिसने नागरिक और आपराधिक न्याय के प्रशासन में सहायता के लिए ग्राम स्तर के निकाय स्थापित किए थे। जिला कलेक्टर द्वारा पंचों को नियुक्त किया गया था। एक पंचायत में उन सदस्यों को शामिल करना था जिनकी संख्या पाँच से सात के बीच थी। एक ग्राम निधि के लिए प्रावधान किया गया था। इस प्रकार, 1920 और 1947 के बीच ढाई दशक तक, ग्राम पंचायतों को अलग-अलग संख्याओं में स्थापित किया गया था, जो कि कलेक्टर द्वारा कथित व्यवहार्यता और सफलता पर निर्भर करता था।¹⁵

1920 के अधिनियम के मुख्य दोष संक्षेप में इस प्रकार हैं: अधिनियम की स्वैच्छिक प्रकृति, स्थानीय पहल की कमी, चुनाव का प्रावधान न होना, अधिकार क्षेत्र की अधिकता के साथ अधिकार क्षेत्र की सीमित शक्ति के साथ एक एकल केंद्र बिंदु पर गतिविधियों की एकाग्रता के लिए अग्रणी और किसी भी प्रावधान की अनुपस्थिति थी। करों के अधिरोपण और प्राप्ति के लिए, इसके मुख्य दोष थे। 1922 का जिला बोर्ड अधिनियम, जिला बोर्डों के लिए निर्वाचित सदस्यों के लिए प्रदान किया गया, जिनकी संख्या 15 से 40 के बीच तय की गई थी। नामित सदस्यों के लिए अधिकतम संख्या तीन थी। कार्यालय का कार्यकाल तीन वर्ष था। 1938 में गठित एक स्थानीय स्व-सरकारी समिति ने निर्वाचित ग्राम पंचायतों की स्थापना की सिफारिश की। दूसरी ओर, यह अपने कुछ आवश्यक कार्यों को करने के लिए जिला बोर्ड की एक एजेंसी होती थी। (उत्तर-प्रदेश गवर्नमेंट एक्ट 1938)¹⁶

राज्य सरकार ने संयुक्त प्रांत लागू किया गया पंचायती राज अधिनियम-1947

स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ, राज्य सरकार ने संयुक्त प्रांत लागू किया गया पंचायती राज अधिनियम-1947 इसने निकायों की शक्तियों और कार्यों का विस्तार करने के अलावा, पंचायत अध्यक्षों के चुनाव के लिए प्रदान किया। 1947 के अधिनियम के तहत, तीन निकाय, गाँव सभा, गाँव पंचायत और पंचायत अदालत (विवादों को निपटाने के लिए) बनाए गए थे। पंचायत सदस्यों को तीन साल की अवधि के लिए गाँव सभा के सदस्यों द्वारा चुना गया था। उत्तर प्रदेश पहला था - 12 जनवरी 1950 को संयुक्त प्रांत का नाम बदलकर वर्तमान उत्तर प्रदेश कर दिया गया। पंचायत कानून (उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1947) लागू करने के लिए राज्य। आजादी के बाद बार-बार संशोधन किया गया। पहला पंचायत चुनाव 1947 से 1949 तक हुआ था, और अगस्त 1949 तक लगभग 35,000 ग्राम पंचायतों और 8,100 न्याय पंचायतों की स्थापना की गई थी (मैथ्यू 2000) 1988 तक, पंचायत चुनाव अपने-अपने समय कार्यक्रम के अनुसार हुए। 1988 के बाद से ही पंचायत चुनाव की प्रक्रिया स्थगित हो गई और पंचायतें धीरे-धीरे राज्य के सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना कम हो गईं। पुनः 73 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, उत्तर प्रदेश पंचायत अधिनियम, 1994 के प्रावधानों के अनुसार, और इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, पंचायतों के चुनाव अप्रैल और मई 1995 में हुए थे। चुनावों के परिणामस्वरूप पूरे प्रदेश में 58,805 ग्राम पंचायतें, 904 क्षत्रिय समितियाँ और 83 जिला पंचायतें बनाई गईं।¹⁷

उत्तर प्रदेश ने 73 वें संविधान संशोधन के अनुरूप नए पंचायती राज कानून को लागू किया। इसने दो मौजूदा कानूनों, अर्थात् संयुक्त प्रांत पंचायती राज अधिनियम, 1947 और उत्तर प्रदेश क्षत्र समिति और जिला परिषद अधिनियम, 1961 में संशोधन किया, जिसमें 73 वें संविधान

संशोधन के अनुरूप प्रावधान शामिल हैं। संशोधित कानून 22 अप्रैल, 1994 को लागू हुए। पंचायती राज के संशोधित कानून के तहत राज्य में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की गयी है जिनमें ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड (खंड स्तर) और जिला पंचायत में क्षेत्र पंचायत जिला स्तर की है। 73 वें संवैधानिक संशोधन भाग- IX के अनिवार्य प्रावधान के अनुपालन में, विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया की दिशा में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निम्नलिखित कदम उठाए गए (झा 2007)¹⁸

राज्य चुनाव आयोग और राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया है।

- SC / ST और महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है।
- पंचायतों का कार्यकाल पांच साल के लिए निर्धारित किया गया। कार्यकाल से पहले पंचायत से पहले भंग कर दिया जाए तो इसके कार्यकाल की समाप्ति तक या छह महीने के भीतर ताजा चुनाव होने होंगे। उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1947 में 29 से अधिक संशोधन किए गए। इस अधिनियम को संयुक्त प्रांत की विधानसभा ने 5 जून 1947 को और संयुक्त प्रांत की विधान परिषद ने 16 सितंबर, 1947 को पारित किया और गवर्नर जनरल की सहमति प्राप्त की। 73 वें संविधान संशोधन के बाद पहली बार वर्ष 1995 में और उसके बाद वर्ष 2000 में पुनर्गठित किया गया। इसमें गठित तीन स्तरीय पंचायती राज निकायों में 52028 ग्राम पंचायतें (ग्राम स्तर), 813 क्षेत्र पंचायतें (ब्लॉक स्तर या मध्यस्थ स्तर) शामिल थीं। और 75 जिला पंचायतें (जिला स्तर) थीं।¹⁹

- मध्यस्थ और जिला पंचायतों के अध्यक्ष का अप्रत्यक्ष चुनाव। 73 वें संवैधानिक संशोधन, भाग- IX के वैकल्पिक प्रावधान (राज्य सरकार के विवेक के अधीन) के अनुपालन के संबंध में, निम्नलिखित उपाय किए गए हैं।
- अधिकारियों, कार्यों और निधियों का स्थानांतरण। ग्राम सभा को अधिकार
- ग्रामीण स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष के चुनाव का तरीका
- ओबीसी का आरक्षण
- करों, कर्तव्यों, टोलों और शुल्क तय करने के लिए पंचायतों का प्राधिकरण
- खातों के रखरखाव और पंचायतों के ऑडिट का प्रावधान

पंचायत चुनावों के संचालन, वित्तीय शक्तियों के विचलन, धन के हस्तांतरण, कार्यों और कार्यवाहियों, ग्राम सभा के सशक्तिकरण और कार्यों के निष्पादन के लिए समितियों के संबंध में पीआरआई की स्थिति की समीक्षा करने के लिए भी प्रावधान किए गए हैं। संविधान का भाग- IX लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण व्यवस्था में सकारात्मक विचलन लाने का इरादा रखता है।

पंचायती राज संस्थाओं को हमेशा सुशासन का साधन माना जाता रहा है और 73 वीं संवैधानिक संशोधन इस उम्मीद से प्रभावित हुआ कि इससे बेहतर शासन को बढ़ावा मिलेगा और अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं जैसे समाज के वंचित वर्ग को राजनीतिक स्थान मिलेगा। 73 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1992 ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया। पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ग्रामीण विकेंद्रीकरण ने राजनीतिक भागीदारी और गतिशीलता के लिए एक मजबूत मंच प्रदान किया

है और इसमें कोई संदेह नहीं है, इससे हाशिए पर और सामाजिक रूप से बहिष्कृत आदिवासी और जनजातीय तथा महिलाओं समूहों जैसे सभी वर्गों के लोगों में राजनीतिक जागरूकता बढ़ी है। 73 वें संवैधानिक संशोधन ने समाज के कमजोर वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जाति और जनजातियों (आदिवासीयों) के मामले में आरक्षण प्रदान करने की प्रक्रिया को भी शामिल किया गया है। यह माना जाता है कि भविष्य में, विकेंद्रीकरण और लोकतांत्रिकरण समाज के हर वर्ग की क्षमता को मजबूत करेगा, विशेष रूप से कमजोर वर्गों के उत्थान के लिये। समाज के बहिष्कृत और वंचित समूहों के लिए, यह जमीनी जड़ लोकतंत्र को सफल बनाता है। 73 वें संवैधानिक संशोधन की नई संभावनाओं को पूरा करने के लिए जमीनी स्तर पर मजबूत राजनीतिक संस्थान एक आवश्यक शर्त है।

संदर्भ सूची-

1. अल्टेकर, ए.एस. (1955), 'प्राचीन भारत में राज्य और सरकार', बनारस: मोतीलाल बनारसी दास
2. अरोड़ा, के.आर. और रजनी गोयल (2006), 'भारतीय लोक प्रशासन: संस्थान और मुद्दे', नई दिल्ली: विसवा प्रकाशन
3. मालवीय, एच.डी. (1956), 'प्राचीन भारत में ग्राम पंचायत', नई दिल्ली: अखिल भारतीय कांग्रेस समितियाँ
4. मजूमदार, आर.सी. (1948), 'एन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया', लंदन: मैकमिलन और कंपनी पेज 137
5. मिश्रा, एस.एन. (1993), 'पंचायती राज संस्थाएँ: प्रारंभ और उसके बाद', नई दिल्ली
6. बाजपेयी, ए (1997), 'पंचायती राज और ग्रामीण विकास', नई दिल्ली: साहित्य प्रकाशन
7. वर्न. डी सूजा, पीआर (2002), 'विकेंद्रीकरण और स्थानीय सरकार: भारत में लोकतंत्र की दूसरी हवा'
8. वही
9. खन्ना, बी.एस. (1999), 'भारत में पंचायती राज: ग्रामीण स्थानीय स्वशासन', नई दिल्ली: दीप और दीप प्रकाशन

10. अरोड़ा, के.आर. और रजनी गोयल (2006), 'भारतीय लोक प्रशासन: संस्थान और मुद्दे', नई दिल्ली: विसवा प्रकाशन
11. माही पाल (2000), 'पंचम अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतें', आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 35 (19): 1602
12. माहेश्वरी, एस.आर. (2011), 'भारत में स्थानीय सरकार', नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन.पब्लिकेशन
13. कश्यप, एस.सी. (2008), अवर पॉलिटिकल सिस्टम, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट
14. कुन्नुमक्कल, सी. मैथ्यू (2011), 'ग्रास-रूट्स लेवल डेमोक्रेसी', योजना, नई दिल्ली, फरवरी 2011.
15. उत्तर प्रदेश सरकार (1938), स्थानीय स्वशासन समिति की रिपोर्ट, भाग II, लखनऊ
16. उत्तर प्रदेश सरकार (1938), स्थानीय स्वशासन समिति की रिपोर्ट, भाग II, लखनऊ
17. कुन्नुमक्कल, सी. मैथ्यू (2011), 'ग्रास-रूट्स लेवल डेमोक्रेसी', योजना, नई दिल्ली, फरवरी पृष्ठ 210 .
18. झा, एन.एस. (2007), उत्तर प्रदेश: द लैंड एंड द पीपल, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट
19. मैथ्यू, जी (2005), राज्यों में पंचायती राज की स्थिति और भारत के केंद्र शासित प्रदेश, सामाजिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली: संकल्पना प्रकाशन